संपादकीय जागरण

बुधवार, 11 जुलाई, 2018 : आषाढ़ कृष्ण 13 वि. 2075

आसक्ति से मुक्ति ही मोक्ष के द्वार खोलती है

शहरी जीवन की त्रासदी

स्वच्छ भारत अभियान के साथ शहरों को स्मार्ट बनाने के इस दौर में राज्य सरकारें साफ-सफाई के प्रति कितनी बेपरवाह हैं, इसका पता इससे चलता है कि सुप्रीम कोर्ट की नोटिस के बाद भी मेघालय, ओडिशा, केरल, पंजाब, बिहार, छत्तीसगढ़, हिमाचल, गोवा और पश्चिम बंगाल ने ठोस कचरे के निस्तारण पर अपना हलफनामा नहीं दाखिल किया। नाराज सुप्रीम कोर्ट ने इन सभी राज्यों पर एक-एक लाख रुपये का जुर्माना तो लगाया ही, यह कहकर नीति-नियंताओं को शर्मसार भी किया कि दिल्ली कचरे में डूब रही है और मुंबई पानी में। ध्यान रहे कि इसी मसले पर पिछली सुनवाई में सुप्रीम कोर्ट ने कचरा निस्तारण पर केंद्र सरकार के आठ सौ से अधिक पन्नों के दस्तावेज को एक तरह का कचरा करार दिया था। सुप्रीम कोर्ट की फटकार के बाद भी साफ-सफाई के प्रति सरकारों के ऐसे रवैये से यह साफ है कि शहरों को स्मार्ट बनाना तो दूर रहा, उन्हें सामान्य तौर पर साफ-सुथरा बनाए रखने की भी चिंता नहीं की जा रही है। इसके प्रमाण आए दिन सामने भी आते रहते हैं। जैसे दिल्ली के नीति-नियंताओं को यह नहीं सूझ रहा कि कचरे का क्या किया जाए वैसे ही मुंबई के नीति-नियंता बारिश से होने वाले जल भराव से निपट पाने में नाकामी का शर्मनाक उदाहरण पेश कर रहे हैं। यदि दिल्ली-मुंबई सरीखे देश के प्रमुख शहर बदहाली से मुक्त नहीं हो पा रहे तो फिर इसकी उम्मीद करना व्यर्थ है कि अन्य शहर कचरे, गंदगी, बारिश से होने वाले जलभराव, अतिक्रमण, यातायात जाम आदि का सही तरह सामना कर पाने में सक्षम होंगे। आखिर इस पर किसी को हैरानी क्यों होनी चाहिए कि जानलेवा प्रदूषण से जूझते शहरों में हमारे शहरों की गिनती बढ़ती जा रही है?

नगर निकाय, राज्य सरकार और साथ ही केंद्र सरकार शहरी विकास के बारे में चाहे जैसे दावे क्यों न करे, देश के शहर बेतरतीब विकास का पर्याय और बदहाली का गढ़ बनते जा रहे हैं। यदि नगर नियोजन की घातक अनदेखी का सिलसिला कायम रहा तो देश के बड़े शहर तो रहने लायक ही नहीं रह जाएंगे। यह किसी त्रासदी से कम नहीं कि समय के साथ शहरों की समस्याएं बढ़ रही हैं और उन्हें ठीक करने के दावे महज जुमले साबित हो रहे हैं। शहरीकरण तब घोर अव्यवस्था से दो-चार है जब हमारे नेता एवं नौकरशाह इससे परिचित हैं कि शहर ही विकास के इंजन हैं। वे इससे भी अवगत हैं कि शहरों की ओर ग्रामीण आबादी के पलायन की रफ्तार और तेज ही होनी है। जब कोशिश इसके लिए होनी चाहिए कि शहर नियोजित विकास का उदाहरण पेश करते हुए आबादी के बढ़ते बोझ को वहन करने की क्षमता विकसित करें तब वे अनुशासनहीन नगरीय जीवन का ठौर बन रहे हैं। इसका मूल कारण है शहरी ढांचे को ठीक करने के लिए जरूरी इच्छाशक्ति का अभाव। इस अभाव के साथ नियोजित विकास के करीब-करीब हर पैमाने का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति ने शहरों की समस्याओं को कहीं अधिक गंभीर बनाने का काम किया है। यदि जिन लोगों पर शहरों को संवारने की जिम्मेदारी है उन्हें जवाबदेह नहीं बनाया गया तो हालात और खराब होंगे।

असल चुनौती

खरीफ की फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में लागत की तुलना में डेढ़ गुना वृद्धि कर दी गई है। ऐसा कर सरकार ने एक ऐसी बड़ी लकीर खींच दी है, जिसे छोटा कर पाना अब किसी के लिए आसान नहीं है। इससे प्रदेश के 2.33 करोड़ किसान परिवारों को फायदा होगा। लघु और सीमांत किसान खासतौर से लाभान्वित होंगे। राज्य में 79.5 और 13.1 फीसद सीमांत और लघु किसान हैं। इनमें भी सर्वाधिक संख्या पिछड़ों की है। लागत के सापेक्ष डेढ़ गुना एमएसपी की मांग सालों पुरानी है जिसे अब भाजपा सरकार ने लागू किया है। विश्व की सबसे बड़ी उर्वरक सहकारिता संस्था इफ्को ने इस फैसले को ऐतिहासिक बताते हुए कहा है कि सरकार के इस कदम से निश्चित ही वर्ष 2020 तक किसानों की आय दोगुनी हो जाएगी। यह देखना दिलचस्प होगा कि राज्य सरकार किस तरह सूबे में केंद्र सरकार के इस महत्वपूर्ण फैसले को सफलता के साथ जमीन पर उतार पाती है।

किसानों को एमएसपी का लाभ मिले इसके लिए सरकार को क्रय केंद्र प्रभारियों और बिचौलियों का गठजोड़ खत्म करना होगा

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, राज्य सरकार द्वारा गेहूं, धान और गन्ने की रिकार्ड खरीद व भुगतान और एक लाख तक के ऋण माफ करने जैसी योजनाएं किसानों के लिए लाभकारी होनी हैं। अब सारा दारोमदार फसलों की खरीद पर है। सरकार अगर हर किसान की फसल खरीद ले तो सफलता शतप्रतिशत है पर यह एक बड़ी चुनौती है। हालांकि सरकार गेहूं और धान की रिकार्ड खरीद एवं भुगतान कर इसका संकेत दे चुकी है। किसानों को एमएसपी का लाभ मिले इसके लिए सरकार को क्रय केंद्र प्रभारियों और बिचौलियों का गठजोड़ खत्म करने पर भी गंभीरता से काम करना होगा। फसलों की लागत को नियंत्रण में रखना भी एक बड़ी चुनौती होगी।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या जीएसटी में रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म खत्म करने से उद्योग जगत को बड़ी राहत मिलेगी?

आज का सवाल

क्या सबसे बड़े मोबाइल संयंत्र के लिए सैमसंग का निवेश भारतीय अर्थव्यवस्था में बढ़ते भरोसे को प्रदर्शित करता है?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर POLL लिखें, स्पेस देकर Y, N या C लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, N-नहीं, C-कह नहीं सकते

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।
सभी आंकड़े प्रतिशत में।

सामरिक मोर्चे पर सुस्त रफ्तार

सी उदयभास्कर

भारतीय रक्षा एवं सैन्य क्षेत्र को व्यापक आधुनिकीकरण और संस्थागत उदारीकरण की दरकार है और यह केवल प्रधानमंत्री की सक्रियता से ही संभव है

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने जब मई 2014 में देश की कमान संभाली थी तो अगले सौ दिनों में राष्ट्रीय सुरक्षा और सैन्य तैयारियों को लेकर उनका रुख काबिले तारीफ था। उनकी पार्टी भाजपा ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में राष्ट्रीय सुरक्षा और फौजियों के कल्याण को खासी तरजीह दी थी। घोषणा पत्र में वादा किया गया था कि सरकार बनने पर इन क्षेत्रों पर पर्याप्त ध्यान दिया जाएगा। राष्ट्रीय सुरक्षा एवं रक्षा तैयारी के मोर्चे पर मोदी सरकार के शुरुआती सौ दिनों की समीक्षा में काफी कुछ उल्लेखनीय मिलेगा। मसलन शपथ ग्रहण के एक महीने से भी कम समय में प्रधानमंत्री ने किसी रक्षा प्रतिष्ठान के पहले दौरे के रूप में विमानवाहक पोत आइएनएस विक्रमादित्य को चुना। जून के मध्य में वहां पहुंचे मोदी ने भारत की समृद्ध, लेकिन लंबे समय से अनदेखी की शिकार सामुद्रिक विरासत का स्मरण कराते हुए भारतीय सुरक्षा बलों को भरोसा दिलाया कि उनकी तमाम जरूरतें उदारतापूर्वक पूरी की जाएंगी। उन्होंने सेवानिवृत्त सैनिकों को भी आश्वस्त किया कि उनकी लंबे समय से की जा रही 'वन रैंक-वन पेंशन' यानी ओआरओपी की मांग को पूरा किया जाएगा। इस सिलसिले को कायम रखते हुए मोदी ने स्वदेशी तकनीक से तैयार किए गए युद्धपोत आइएनएस कोलकाता का जलावतरण किया। वह लेह गए और सैनिकों को संबोधित किया। इसी के साथ उन्होंने डीआरडीओ के वैज्ञानिकों का आह्वान किया कि वे और समर्पण भाव से काम करें ताकि भारत स्वदेशी रक्षा उत्पादन क्षमताएं हासिल करने में सक्षम हो सके। मोदी ने 'मेक इन इंडिया' मुहिम भी शुरू की। इसमें सभी भागीदारों को इसे उच्च प्राथमिकता देने के लिए प्रोत्साहित किया गया ताकि भारत आयातित रक्षा साजोसामान पर ही निर्भर न रहे।

सौ दिनों की अवधि के हिसाब से यह शानदार आगाज था। मोदी की वक्तृत्व कला अपना पूरा असर दिखा रही थी। उनकी छवि ऐसे प्रतिबद्ध प्रधानमंत्री की बन रही थी जो अपने जवानों का दुख-दर्द समझकर उनसे जुड़ाव रखने के साथ ही राष्ट्रीय सुरक्षा को सर्वोपरि मानता है। मोदी का निजी करिश्मा और राजनीतिक समाधान निकालने की खूबी को लेकर बनी आम धारणा मनमोहन सिंह के नेतृत्व में दस वर्षों तक सत्तारूढ़ रही संप्रग सरकार के एकदम उलट थी। राष्ट्रीय सुरक्षा के मोर्चे पर संप्रग सरकार बेहद लचर मानी जाती थी, जबकि निरंतरता के दृष्टिकोण से वह ऐसी सरकार थी जिसमें रक्षा मंत्री एके एंटनी सबसे लंबे समय तक अपने पद पर काबिज रहे। लगभग आठ वर्षों तक रक्षा मंत्री रहने के बावजूद एंटनी शीर्ष रक्षा प्रबंधन को लेकर कोई बड़ा बदलाव लाने में नाकाम रहे। उनके समय में आर्टिलरी गन, लड़ाकू विमान और पनडुब्बियों की जरूरतों को भी पूरा नहीं किया जा सका। मोदी सरकार से उम्मीद की गई कि वह रक्षा एवं सैन्य क्षेत्र में पिछड़ेपन की लंबे अर्से से चली आ रही समस्या का समाधान करेगी। सेवारत और सेवानिवृत्त कर्मी भी बदलाव का इंतजार कर रहे थे। चार साल बाद रक्षा एवं सैन्य मोर्चे पर हुई प्रगति को देखा जाए तो उसे सुस्त ही कहा जाएगा। इस क्षेत्र को जिन नीतियों और संस्थागत सुधारों का इंतजार है वह अभी भी खत्म होता नहीं दिखता।

अवधेश राजपूत

रक्षा और सैन्य क्षमताओं जैसे प्रमुख राष्ट्रीय मुद्दों के पैमाने पर मोदी सरकार के प्रदर्शन का आकलन कैसे किया जा सकता है? सबसे पहले तो यह समझना होगा कि शीर्ष स्तर के सैन्य प्रबंधन को आमूलचूल बदलाव की जरूरत है। 1999 के करगिल युद्ध के बाद से ही ऐसा महसूस किया गया था। तब सैन्य साजोसामान एवं क्षमताओं में कमी का भी आकलन किया गया था। इसके बाद के. सुब्रमण्यम की अध्यक्षता में बनी करगिल समिति की विस्तृत रिपोर्ट में कई ठोस सिफारिशें की गईं जिनमें भारतीय खुफिया एजेंसियों का नए सिरे से कायाकल्प करना भी शामिल था। प्रतिरक्षा के मोर्चे पर कई बड़े संस्थागत सुधारों की जरूरत है। सबसे तत्काल आवश्यकता तो तीनों सेनाओं में समन्वय लाने की है। उपकरणों की तकनीकी गुणवत्ता भी सुधारने का काम शेष है। इसी के साथ घरेलू स्वदेशी उत्पादन क्षमताओं को बढ़ाते हुए यह भी ध्यान रखना होगा कि हथियारों और उनके लिए तैयार ढांचे में कहीं कोई खामी न रहे। यह एक बहुत जटिल कवायद है और इसके लिए समर्पित राजनीतिक इच्छाशक्ति और पेशेवर विशेषज्ञता की जरूरत है, लेकिन दुख की बात है कि पिछले चार वर्षों में इन दोनों का ही अभाव दिखा है। भारत जैसे लोकतांत्रिक ढांचे वाले देश में जब व्यापक राष्ट्रीय सुधार और क्षमता का निर्माण करना होता है तो उसके लिए प्रधानमंत्री ही राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करते हैं और संबंधित कैबिनेट मंत्री उस विषय के विशेषज्ञों के साथ मिलकर स्थिति के अनुसार सुधार को आगे बढ़ाते हैं।

दो ऐसे उदाहरण हैं जो यह दर्शाते हैं कि प्रतिबद्ध प्रधानमंत्रियों के नेतृत्व में कृषि और आर्थिक सुधारों के मामले में भारत कैसे कायाकल्प करने में कामयाब रहा। 1960 के दशक में भारत खाद्यान्न के मामले में विदेशी सहायता और मुख्य रूप से अमेरिकी मदद का ही मोहताज था। यह शर्मसार करने वाली स्थिति थी। इससे निपटने का प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने बीड़ा उठाया। आज हम जिस क्रांतिकारी पड़ाव को हरित क्रांति के नाम से जानते हैं उसकी बुनियाद राजनीतिक नेतृत्व ने ही रखी थी। इसके लिए खाद्य मंत्री सी सुब्रमण्यम और उनकी टीम में शामिल डॉ. एमएस स्वामीनाथन और बी शिवरामन जैसे काबिल पेशेवरों को भी बराबर का श्रेय जाता है। हरित क्रांति ने भारत की खाद्यान्न आयात पर निर्भरता का अंत किया और उसके बाद श्वेत क्रांति ने देश की दुग्ध एवं दुग्ध उत्पादों की संभावनाओं को भुनाकर इतिहास रचा। इसी तरह 1990 के दशक में अर्थव्यवस्था का कायांतरण करने वाले आर्थिक सुधार भी प्रधानमंत्री नरसिंह राव की इच्छाशक्ति से ही संभव हुए। राव और उनके वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह एवं उनकी टीम में शामिल अर्थशास्त्रियों का इसमें अहम योगदान रहा। भारत का रक्षा एवं सैन्य क्षेत्र अर्से से सुधारों की बाट जोह रहा है। इसके लिए कैबिनेट स्तर पर प्रतिबद्ध राजनीतिक नेतृत्व के साथ ही विषय विशेषज्ञों की भी उतनी ही जरूरत है। अफसोस की बात है कि मोदी ऐसी टीम नहीं बना पाए हैं। रक्षा मंत्री के पद पर भी चार बार बदली हो चुकी है, जो अपनी व्यथा खुद बयान करता है। बीते दस वर्षों में तीनों सेनाओं के साजोसामान में खासी कमी आई है। स्वदेशी उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए पांच बड़ी समितियां और कार्यबल तो गठित हुए, लेकिन उनकी सिफारिशों पर ढंग से अमल नहीं हुआ।

राफेल जैसे लड़ाकू विमान लाने या अमेरिका से कुछ रक्षा प्रणालियां हासिल करना सामान्य कवायद ही कही जाएगी। ओआरओपी के आंशिक फायदों को बड़ा नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह इंदिरा गांधी की गलती में सुधार करना ही था। भारतीय रक्षा एवं सैन्य क्षेत्र को व्यापक आधुनिकीकरण और संस्थागत उदारीकरण की दरकार है और यह केवल प्रधानमंत्री के स्तर से ही संभव हो सकता है। प्रधानमंत्री ने तमाम वादे किए और प्रतिबद्धताएं भी जताईं, लेकिन उनकी टीम नतीजे देने में नाकाम रही। चार साल बाद उनके वादों और हकीकत में बड़ा अंतर है।

(लेखक सुरक्षा मामलों के विशेषज्ञ एवं सोसायटी फॉर पॉलिसी स्टडीज के निदेशक हैं)

response@jagran.com

सच का सामना करने से इन्कार

राजीव सचान

हैरानी है कि करीब चार दशक पहले तो बढ़ती जनसंख्या एक मुद्दा थी, लेकिन अब वह किसी के एजेंडे में नहीं

अभी हाल में सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस सुधार संबंधी एक दशक से अधिक पुराने अपने फैसले की सुध ली। उसने केंद्र सरकार सहित सभी राज्य सरकारों को आदेश दिया कि वे कार्यवाहक पुलिस महानिदेशकों की नियुक्ति करने से बाज आएं और पुलिस महानिदेशक पद पर किसी को नियुक्त करने के पहले शीर्ष पुलिस अधिकारियों की एक सूची संघ लोक सेवा आयोग को भेजें ताकि वह तीन नामों का एक पैनल बना सके। सुप्रीम कोर्ट के निर्देशानुसार केंद्र अथवा राज्यों को इसी पैनल में से ही कोई एक नाम पुलिस महानिदेशक के लिए चयनित करना होगा। सुप्रीम कोर्ट की ओर से दी गई यह व्यवस्था एक तरह कार्यपालिका के काम में हस्तक्षेप है, लेकिन उसे उसके अधिकार क्षेत्र में इसलिए दखल देना पड़ा, क्योंकि न तो केंद्र सरकार पुलिस सुधारों के प्रति दिलचस्पी दिखा रही थी और न ही राज्य सरकारें। सुप्रीम कोर्ट को रह-रह कर ऐसे अनेक मसलों पर दखल देना पड़ता है जो मूलतः कार्यपालिका अथवा विधायिका के कार्य क्षेत्र के दायरे में आते हैं। एक अर्से से यह देखने में आ रहा है कि सरकारें जटिल सामाजिक एवं धार्मिक मसलों को सुलझाने से बचने में ही अपनी भलाई समझती हैं। सरकारों का काम इसलिए और आसान हो गया है, क्योंकि विपक्षी दल भी इन मसलों पर मौन धारण रखना या फिर जैसा चल रहा है वैसा ही चलने देने के पक्ष में रहते हैं। यह किसी से छिपा नहीं कि तीन तलाक के मसले पर अधिकांश विपक्षी दलों का यही कहना था कि सरकार अथवा सुप्रीम कोर्ट को तो इस पचड़े में पड़ना ही नहीं चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट के पास जो तमाम सामाजिक मसले हैं उनमें तीन तलाक के बाद हलाला निकाह भी है और मुस्लिम महिलाओं के खतने की प्रथा पर रोक का मामला भी। समलैंगिकता और जनसंख्या संबंधी मसले भी उसके समक्ष विचाराधीन हैं। यह ठीक है कि मोदी सरकार तत्काल तीन तलाक के खिलाफ खड़ी हुई, लेकिन यह स्पष्ट नहीं कि समलैंगिकता को अपराध मानने वाली धारा 377 पर उसका क्या रुख है? भले ही सुप्रीम कोर्ट समलैंगिकता को अपराध मानने के मसले पर सुनवाई कर रहा हो, लेकिन यह किसी से छिपा नहीं कि उसने ही दिल्ली उच्च न्यायालय के उस फैसले को पलटा था जिसमें धारा 377 को खारिज कर दिया गया था। कहना कठिन है कि समलैंगिकता पर सरकार का क्या रुख होगा और सुप्रीम कोर्ट अपने फैसले को खारिज करेगा या नहीं, लेकिन उसके पास एक अन्य बड़ा सामाजिक मसला जनसंख्या का भी है। बढ़ती जनसंख्या एक गंभीर मसला है, लेकिन आज जब बढ़ती-घटती जनसंख्या दुनिया के अनेक देशों में एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है तब किसी को नहीं पता कि भारत में सत्तापक्ष या विपक्ष का इस मसले पर क्या कहना है? यह हैरानी की बात है कि करीब चार दशक पहले बढ़ती जनसंख्या तो एक मुद्दा थी, लेकिन आपातकाल में जबरन नसबंदी अभियान के बाद राजनीतिक दलों एवं अन्य नीति-नियंताओं के एजेंडे से यह मसला ऐसे बाहर हुआ कि फिर किसी ने उसकी सुध नहीं ली। क्या यह अजीब नहीं कि 43 साल पहले 1975 में जब भारत की आबादी 55-56 करोड़ थी तब तो बढ़ती जनसंख्या एक गंभीर मसला थी, लेकिन आज जब वह बढ़कर 130 करोड़ से अधिक हो गई है तब कोई भी उसके बारे में न तो चर्चा करता है और न ही चिंता?

इसमें दोराय नहीं कि इंदिरा गांधी ने आपातकाल थोपकर बहुत बुरा किया, लेकिन इससे भी बुरा यह हुआ कि उस दौरान जनसंख्या नियंत्रण के जबरन तौर-तरीकों ने राजनीतिक दलों को इतना भयभीत कर दिया कि उन्होंने जनसंख्या विस्फोट से आंखें ही मूंद लीं। हालत यह हुई कि जनसंख्या नियंत्रण विभाग का नाम ही बदलकर परिवार नियोजन कर दिया गया। नए नाम वाले इस विभाग ने अपनी सारी ऊर्जा गर्भनिरोधक उपायों के प्रचार-प्रसार में लगा दी और इस तरह जनसंख्या नियंत्रण का मसला सदैव के लिए नेपथ्य में चला गया। ऐसा तब हुआ जब भारत दुनिया का पहला देश था जिसने बढ़ती जनसंख्या की समस्याओं का संज्ञान लिया और 1952 में ही आबादी नियंत्रण का राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया। चूंकि भारत ऐसा करने वाला पहला देश बना इसलिए दुनिया के उन देशों ने भी हमसे सीख ली जहां जनसंख्या तेजी के साथ बढ़ रही थी।

इसका कोई मतलब नहीं कि हम हर साल जून में आपातकाल की याद करें, लेकिन यह भूल जाएं कि कैसे इस काले कालखंड ने एक जरूरी राष्ट्रीय कार्यक्रम को हमेशा के लिए पटरी से उतार दिया? यह सही है कि आपातकाल के दौरान संजय गांधी की सनक के चलते जनसंख्या नियंत्रण का अभियान एक दहशत बन गया था, लेकिन जरूरत इस दहशत को खत्म करने की थी, न कि इस जरूरी अभियान को विस्मृत कर देने की। हमारे नेताओं ने दहशत खत्म करने के नाम पर एक उपयोगी राष्ट्रीय कार्यक्रम को एक तरह से ठंडे बस्ते में डाल दिया। इसका ही यह दुष्परिणाम हैं कि भारत आबादी के मामले में जल्द ही चीन को पछाड़ने वाला है। आज जैसा माहौल है उसमें अगर कोई राजनीतिक दल और खासकर सत्तारूढ़ दल जनसंख्या नियंत्रण की जरूरत भी जताए तो उसे जनविरोधी करार देने में समय नहीं लगेगा। दुनिया के अन्य देशों की तरह हम भी 11 जुलाई को जनसंख्या दिवस मनाते हैं, लेकिन इस दौरान महज रस्म अदायगी ही होती है। सभा-संगोष्ठी में चर्चा-परिचर्चा करके यह मान लिया जाता है कि जनता को बेलगाम बढ़ती जनसंख्या के खतरों से अच्छी तरह आगाह कर दिया गया। निःसंदेह पढ़ा-लिखा तबका परिवार नियोजन की महत्ता से परिचित है, लेकिन अनपढ़-निर्धन तबका इसके प्रति सचेत नहीं कि जरूरत से ज्यादा बड़ा परिवार मुसीबत की जड़ है। भला हो सुप्रीम कोर्ट का कि उसने सरकार की ओर से जनसंख्या नियंत्रण की कोई प्रभावी नीति बनाए जाने की मांग वाली याचिकाओं को मंजूर कर लिया है, लेकिन उसे ऐसा कोई फैसला भी देना होगा जिससे अभीष्ट की पूर्ति हो। और भी बेहतर होगा कि वह राजनीतिक दलों को यह हिदायत भी दे कि वे फालतू के मसलों पर तू तू- मैं मैं करने के बजाय समाज और देश की चिंता करना सीखें। इसमें संदेह है कि सुप्रीम कोर्ट राजनीतिक दलों को ऐसी कोई हिदायत देगा और यदि देगा भी तो उनकी सेहत पर कोई असर पड़ेगा, लेकिन इसमें दोराय नहीं कि वे जनहित से जुड़े मसलों पर चर्चा करने से कन्नी ही अधिक काटते हैं। ऐसा करके वे न केवल सच का सामना करने से इन्कार करते हैं, बल्कि अपने स्वार्थी रवैये का परिचय देते हैं।

(लेखक दैनिक जागरण में एसोसिएट एडीटर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

ईर्ष्या

ईर्ष्या एक नकारात्मक भाव है जिसकी तीव्रता कभी मंद तो कभी तीव्र प्रतीत होती है। कभी-कभी तो अत्यधिक ईर्ष्याग्रस्त प्राणी दूसरों को हानि पहुंचाने के साथ-साथ अपने विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। ईर्ष्या का जन्म स्वयं अपनी उन कमजोरियों से होता है जो उन्नति पथ में बाधक होती हैं। जब मनुष्य अपनी कमियों से असफलताओं का शिकार बनता है तब उसमें पराजय की भावना आ जाती है, किंतु अपने अहंकार के कारण व उनका स्रोत अपने अंदर न देखकर दूसरों पर दोषारोपण किया करता है। ईर्ष्याग्रस्त प्राणी स्वयं अपने को ही पीड़ा देता है। जिस प्रकार मोमबत्ती को जलाने के लिए माचिस की तीली को पहले स्वयं जलना ही पड़ता है उसी प्रकार दूसरे व्यक्ति को हानि पहुंचाने से पूर्व ईर्ष्यालु व्यक्ति खुद को हानि पहुंचाता है। वैज्ञानिक विश्लेषण से यह सिद्ध हो चुका है कि क्रोध और ईर्ष्या की स्थिति में शरीर से नुकसानदेह हार्मोन का स्राव ज्यादा होता है।

ऐसा कहा जा सकता है कि यदि चिंता चिता के समान है तो ईर्ष्या उसे प्रज्ज्वलित करने वाली अग्नि है। इसीलिए ईर्ष्या का दूसरा नाम जलन है। मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता, परंतु अविवेकी लोग यह मानने लगते हैं कि मैं सबसे अग्रणी हूं। मुझसे अच्छा या योग्य कोई नहीं। ऐसी स्थिति में जब वह उसे प्राप्त नहीं कर पाता जो औरों को प्राप्त है तो वह ईर्ष्या के भाव से ग्रस्त होने लगता है। संत तिरुवल्लुवर के अनुसार ईर्ष्या, क्रोध और घृणा को जन्म देती है जिसका परिणाम भयंकर होता है। विश्वास रखिए कि आप अपनी ही कमियों, कमजोरियों और अयोग्यताओं के कारण ही असफल हुए हैं, किसी और के कारण नहीं। मनोवैज्ञानिकों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि एक सीमा से आगे पहुंचकर ईर्ष्या मनुष्य को एक प्रकार की रुग्णावस्था में पहुंचा देती है और दुर्भाग्यवश ईर्ष्यालु को इस बात का पता नहीं चल पाता कि ईर्ष्या की मनोदशा उसे किस दलदल में फंसा रही है। ईर्ष्या ईर्ष्यालु मनुष्य को पूर्णतः नष्ट कर देती है। यह मनुष्य के अपने ही हाथ में है कि वह किसी के लिए अपने मन में ईर्ष्या रखता है अथवा सद्भावना। किसी की सफलता अथवा उन्नति में प्रसन्न होने से आपकी गांठ से कुछ भी तो नहीं जाता। उल्टे दूसरों का स्नेह अथवा श्रद्धा पात्र बनकर आपको लाभ ही लाभ है।

डॉ. पूर्णिमा अग्रवाल

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

अल्पसंख्यक विशिष्टता का खामियाजा

बलबीर पुंज का आलेख 'दलित आरक्षण पर अनुत्तरित प्रश्न' का उत्तर यही है कि आज भारतवर्ष उस गलती की सजा भुगत रहा है जो देश विभाजन के बाद एक वर्ग विशेष को 'अल्पसंख्यक' का विशिष्ट दर्जा देकर की गई थी। संवैधानिक रूप से 'अल्पसंख्यक' शब्द परिभाषित नहीं है, बावजूद इसके 'अल्पसंख्यक' शब्द को एक वर्ग विशेष की विशिष्टता का द्योतक मानकर 70 वर्षों से ढोया जा रहा है। वोट की दूषित राजनीति के तहत विभाजन के बाद शेष बचे मुस्लिम वर्ग को 'अल्पसंख्यक' और हिंदुओं को 'बहुसंख्यक' बताकर जिन्ना के द्विराष्ट्रवादी अवशेष को जीवंत रखने का औचित्य आज भी उसी तरह अनुत्तरित है। कभी एएमयू और जामिया जैसे विशिष्ट शिक्षण संस्थानों की दलित विरोधी नीति पर प्रश्न क्यों नहीं उठाया? कदाचित यह प्रश्न भी यदि अनुत्तरित है तो केवल इसलिए, क्योंकि इस देश की राजनीति में 'अल्पसंख्यक' विशिष्टता से युक्त वर्ग विशेष के वोट को सत्ता पर काबिज रहने का आधार मान लिया गया। आज जब भारतीय समाज को एक 'राष्ट्र' रूप में समरस बनाने की सदिच्छा से राजनीतिक स्वार्थवश गढ़ी गई 'अल्पसंख्यक' विशिष्टता पर प्रश्न उठ रहे हैं तो राष्ट्र-हित में इस पर सार्थक विमर्श की जरूरत है। ताकि अभी तक इस देश के बहुसंख्यक वर्ग ने इस 'अल्पसंख्यक' विशिष्टता का जो खामियाजा भुगता है, उस पर विराम लग सके, क्योंकि इस देश के संसाधनों पर अल्पसंख्यकों का पहला हक बताने वाली मानसिकता ने वही करने की कोशिश की है, जिसे जिन्ना ने इस देश के हिंदू-मुस्लिम भाइयों को दो राष्ट्र बताकर देश के विभाजन के रूप में प्रतिफलित किया था।

pandeyvp1960@gmail.com

जेल और सुरक्षा व्यवस्था?

कल उत्तर प्रदेश के बागपत जेल में दुर्दांत बदमाश प्रेम प्रकाश उर्फ मुन्ना बजरंगी को एक और बदमाश सुनील राठी ने प्रातःकाल ही उसके बैरक में गोलियों से भून डाला। यह मारा गया अपराधी स्वयं अपने विगत बीस साल के जीवन में 40 हत्याओं की बात कबूलता था। इन माफियाओं और गुंडों का अंत ऐसे ही होता है। सबसे अहम बात यह है कि हमारी सुरक्षा व्यवस्था कितनी चाक-चौबंद है? आम जनता में यह एक प्रचलित मुहावरा है कि जेलों की ऊंची दीवारों के अंदर परिंदा भी पर नहीं मार सकता, परंतु अब तक तो यही सुनते आ रहे थे कि भारतीय जेलों के अंदर अपने रसूख और पैसे के बल पर हर सुख-सुविधा की व्यवस्था कराई जा सकती है, परन्तु पहली बार यह सुना कि जेलों के अंदर पिस्तौल ले जाकर, अपने दुश्मन को जेल के अंदर भी ठिकाने लगाया जा सकता है। सुरक्षा के दृष्टिकोण से बागपत जेल की यह घटना बहुत ही चिंताजनक है। nirmalkumarsharma3@gmail.com

पर्यावरण बचाओ महज नारा नहीं

पर्यावरण बचाओ के नारे जहां-तहां सुनने को मिल जाते हैं, परंतु विडंबना यह है कि हमारा समाज आज भी पर्यावरण की महत्ता को आत्मसात नहीं कर पाया है। यह एक अभिशप्त स्थिति है कि सरकारों द्वारा चुनाव पूर्व की गई घोषणाओं में कभी पर्यावरण, जलवायु के मुद्दे समाहित नहीं हुए, शायद सभी राजनीतिक दल उन मुद्दों को अधिक प्राथमिकता देते हैं, जिससे वह अपने वोटबैंक को भुना सकें। कंक्रीट के जंगलों में तब्दील होते हमारे शहर, गांव आज भूमिगत जल की भीषण समस्या से ग्रसित हैं, परंतु उस ओर ना वहां की आबादी ध्यान देती है और ना ही आबादी को संचालित करने वाले रहनुमाओं को ही कुछ परवाह है। फिलहाल आवश्यकता है कि हम पर्यावरण के संरक्षण को लेकर जागरूक हों और तमाम सरकार के आकाओं को भी विवश करें, जिससे वे पर्यावरण की समस्याओं को अपनी प्राथमिकताओं में शामिल करें। kumarvikaskr43@gmail.com

अंधविश्वास की समस्या

अंधविश्वास के कारण हुए जुर्म की खबरें आए दिन मिलती रहती हैं। कभी बाबाओं के झांसे में आकर तो कभी नेताओं के ऊपर अंधभक्ति के कारण या तो हम अपनी जान दे देते हैं या किसी और की जान ले लेते हैं। हम इसके पीछे उनकी मंशा को भांप नहीं पाते हैं। अंधविश्वास को फलने फूलने के लिए धर्म सबसे आसान खाद युक्त जमीन होती है और इसको और उर्वरक बनाने के लिए नेता, बाबा हमेशा तत्पर रहते हैं। बार-बार उनकी इस मुहिम में बलि का बकरा बनते हैं हम। हमें उनकी मंशा समझनी होगी। धर्म और अंधविश्वास के बीच के उस महीन लकीर को पहचानने और परखने में कुशलता हासिल करनी होगी, तब जाकर हम अपने आप को अंधविश्वास के चंगुल में फंसने से रोक पाएंगे।

sakettejaswi@gmail.com

दक्षिण कोरिया-भारत संबंध

दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति की भारत यात्रा इस बार दोनों देशों के द्विपक्षीय रिश्तों के लिहाज से बेहद अहम नजर आ रही है। अगर देखा जाए तो यह रिश्ता कूटनीति के साथ आर्थिक लिहाज से मजबूत कड़ी साबित होगा। भारत व दक्षिण कोरिया का एकसाथ कदम बढ़ाना, वैश्विक आर्थिक मजबूती स्थापित करेगा। अगर दोनों देश साथ होकर व्यापार के क्षेत्र में उतरते हैं तो आने वाले समय में आर्थिक जगत में चौथे स्तंभ के रूप में उपस्थित हो सकते हैं। बहरहाल इस समय दुनिया की सबसे बड़ी मोबाइल यूनिट सैमसंग के उद्घाटन के अवसर पर दोनों देश एक-दूसरे में अपार संभावनाएं देख रहे हैं और यह सही भी है आज के वैश्विक परिवेश में तकनीक और मेहनत के बल पर ही कोई देश कामयाबी के शिखर पर पहुंच सकता है।

ss6066356@gmail.com

ट्वीट-ट्वीट

बारिश से बदहाल मुंबई के लिए किसी को बीएमसी को दोष नहीं देना चाहिए। मुंबई में कभी बारिश होती ही नहीं। लोग कभी सड़क इस्तेमाल ही नहीं करते। कोई उपनगरीय रेल तंत्र भी नहीं। ये सब एकाएक पैदा हुई हैं तो जोकरों को हैरानी हो गई। संभव है कि वे अगले साल पूरी तैयारी करें, लेकिन कौन जानता है कि शायद अगला साल ही न आए।
सुहेल सेठ@suhelseth

जियो इंस्टीट्यूट अभी तक खुला भी नहीं, फिर भी सरकार ने उसे अव्वल दर्जा प्रदान किया है। यही मिस्टर अंबानी होने का रुतबा है। यशवंत सिन्हा@YashwantSinha

अंबानी अपना पैसा लगाएं तो यह बुरी बात है। असल में हमें अमर्त्य सेन मार्का नालंदा विश्वविद्यालय चाहिए जहां सरकारी खजाने से करोड़ों रुपये प्राइमरी स्कूल की इमारत बनाने में खर्च हो जाएं। दिल्ली की बैठकों में शामिल होने के लिए प्रोफेसरों को पूरी पगार मिलती रहे और जहां कभी कोई कक्षा ही न लगी हो। यही हमारा सबसे महान सपना है और तभी हम लिबरल माने जाएंगे। अभिनव प्रकाश@Abhina_Prakash

थाइ गुफा से सभी बच्चों के बाहर आने पर जहां सभी खुश हैं, लेकिन इस अभियान में अपनी जान गंवाने वाले थाई नौसेना के जवान की शहादत को भी हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।
शिव अरूर@ShivAroor

जनपथ

गोली से खेला किए जो जीवन पर्यंत,
उनका भी होता दिखे गोली से ही अंत।
गोली से ही अंत समझ लो ये सच्चाई,
करती पूरा न्याय आपकी कर्म-कमाई।
घूमो भले बनाय चार चमचों की टोली,
अगर बुरे हैं कर्म ढूंढ ही लेगी गोली।

– ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा जागरण प्रकाशन लि. के लिए डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित एवं 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित, संपादक (दिल्ली एनसीआर) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No 50755/90 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त। वर्ष 28 अंक 357